यजुर्वेद का स्वाध्याय

यजुर्वेद में राष्ट्र व्यवस्था

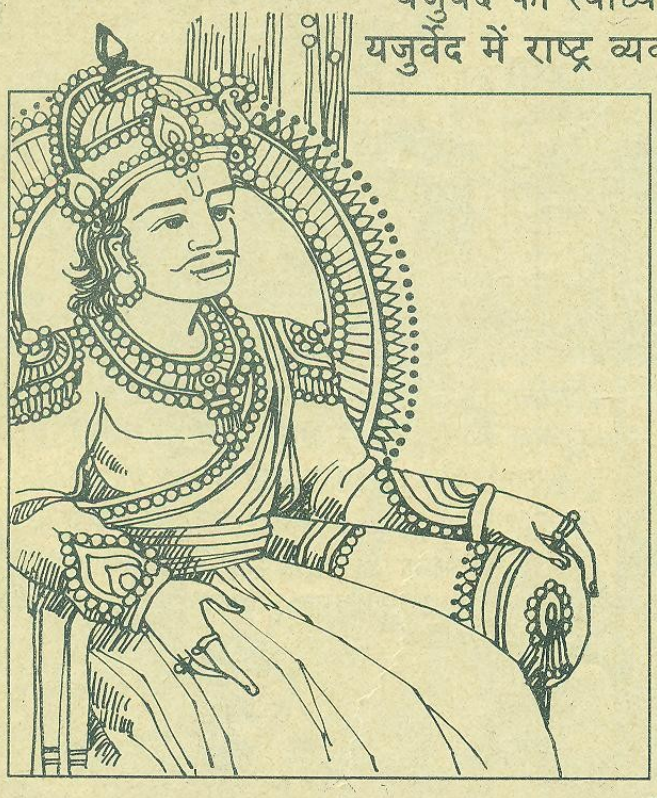

यजुर्वेद को गृहस्थाश्रम के कर्मो का वेद माना गया है। गृहस्थ काल की आयु वाले लोग ही, चार वर्णो में विभक्त होकर समाज बनाते हैं। अत: यजुर्वेद में सम्पूर्ण समाज को चलाने के लिये आवश्यक तत्वों का समावेश हुआ है। समाज को व्यवस्थित करने के लिये, शासन का नियन्त्रण आवश्यक होता है। इसलिये इस वेद में यथास्थान राज्य व्यवस्था अथवा राज प्रजा धर्म का वर्णन भी हुवा है। यजुर्वेद स्वाध्याय के इस भाग में, यजुर्वेद में आए मन्त्रों तथा उनके संकेतों के आधार पर उसी व्यवस्था को देखने का प्रयास किया गया है।

व्यवस्था का प्रमुख राजा

यह व्यवस्था राजतन्त्र की शैली में हो , अथवा प्रजातन्त्र की शैली में, इसके प्रमुख का नाम राजा रक्खा गया है। राजतन्त्र का अर्थ है- जिसमें राजा आनुवंशिक होता है, और राजा तथा उसके तन्त्र अर्थात अधिकारियों और कर्मचारियों की प्रधानता होती है। इस तन्त्र में प्रजा की आवाज गौण होती है। उसकी सुख सुविधाओं पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता।

प्रजातन्त्र का अर्थ है जिसमें राजा प्रजा में से चुना जाता है, और वह प्रजा की सुख सुविधा का भी उतना ही ध्यान रखता है, जितना अपना या अपने तन्त्र का रखता है।

राजा को परमात्मा का प्रतिनिधि माना गया है। अर्थात् उसे परमात्मा के समान न्यायकर्ता, प्रजा के सुखदु:ख का द्रष्टा उनके दु:खी और अभावों को दूर करके उनके लिये अधिक से अधिक सुख सुविधा का जुगाड़ करके, अपने राष्ट्र को समृद्धिशाली बनाने का प्रयत्न करना चाहिये। उसे अपने को प्रजा का शासन न मानकर, माता पिता सदृश अपने हितों की उपेक्षा करके प्रजा के हितों के लिए सब तरह का त्याग करने के लिये उद्यत रहना चाहिये। यही कारण है कि वेद के अनेक मन्त्रों का सामाजिक अथवा आधिभौतिक अर्थ करते हुवे राजा परक अर्थ किया जाता है, जिनका अध्यात्मिक या आधि दैविक दृष्टि से परमात्मा परक अर्थ किया जाता है। इसलिये परमात्मा के प्रतिनिधि अथवा सत्यराजा के लिये वेद कहता है- उसे सबका मंगलकामी तथा मंगल कारी होना चाहिये। जिससे प्रजाएँ सदा उसी को राजा बनाना चाहें, और उसके शासन काल से किसी प्रकार राष्ट्र की अवनति या पतन न हो।

सुश्लोक सुमंगल सत्राजन्। यजु:२०-४

विश्वस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधिभ्रशत्। यजु:१२-२१

य: प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पद: कस्मै देवाय दविषा विद्येम।।
यजु १३-३

राजा की कालावधि

राजा को परमात्मा का अंश या प्रतिनिधि मानने का अनिवार्य संकेत यह है कि यदि वह अपने कर्तव्यों को त्याग कर अपने या अपनों की स्वार्थ साधनों में लग जाता है, तो उसे पदच्युत करके नई नियुक्ति कर लेनी चाहिये। इसीलिये वेद में आया है कि विशि राजा प्रतिष्ठित:। यजु: २०-९

जब तक प्रजा संतुष्ट है, तभी तक राजा की प्रतिष्ठा है, और तभी तक उसे शासन का प्रमुख बने रहना चाहिये। इस स्थापना की पुष्टि करता है अर्थर्व ६-८७-२। इसमें कहा गया है कि यदि राजतन्त्र का राजा है तो मृत्युपर्यन्त अथवा शासन सामर्थ्य की अवस्था तक, और यदि प्रजातन्त्र का राजा है तो अपनी पूर्ण अवधि तक पर्वत के समान अविचल रहता हुआ, राष्ट्र का धारण करता रह, इस पद से अवधि से पूर्व च्युत मत होना।

इहेवैधि मापच्योष्ठाः पर्वत इवाविचलत।
इन्द्र इवेह ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमुधारय।। अथर्व
आत्वाहार्षमन्तर भूध्रुर्वस्तिष्ठाविवाचलिः।
विशस्त्वा सर्वावाञ्छन्तु मात्वद्राष्टमधिभ्रशत्।।

यजु १२-२१

प्राचीन काल में राजा सार्वभौम अर्थात सर्वा होता था। शासन के प्रत्येक विभाग में उसकी इच्छा सर्वोपरि होती थी। किन्तु धीरे धीरे अनुभव के आधार पर प्रधानमन्त्री, प्रधान सेनाध्यक्ष, संसद का अध्यक्ष, मुख्य न्यायाधीश, अर्थ, शिक्षा चिकित्सा आदि विभागों के अध्यक्ष बना कर राजा को अनेक रूपों में विभक्त कर दिया गया।

जैसे परमात्मा सर्वोपरि एक राजा है, और अग्नि, वायु, आदित्य आदि देवता एक क्षेत्र के राजा हैं, वैसे ही राष्ट्र में ये विभागाध्यक्ष भी राजा के अवान्तर रुप हैं।

राजा के क्या गुण होने चाहिये? या किन गुणों से युक्त को राजा नियुक्त किया जाना चाहिये? और इन गुणों से रहित हो जाने पर उसे पदच्युत किया जा सकता हैं? इन पर विचार करते हैं। गुणों का वर्णन वेद में कई प्रकार से करने की शैली है। कभी देवताओं के गुणों के मिष से, कभी प्रार्थना के रुप में, कभी आदेश या निर्देश के रूप में, राजा के कर्तव्यों का वर्णन किया जाता है।

किसे राजा बनाएं? और किसे राजा स्वीकार करें? इस सम्बन्ध में यजुर्वेद भाष्य में दिये गए मन्त्रों के भावार्थ में स्वामी दयानन्द द्वारा प्रदर्शित वेद की भावना का दर्शन कीजिये।

१) सब मनुष्यों को उचित है कि सुपात्रों को दान देने, धन का अपव्यय न करने, सबको विद्याबुद्धि देनेवाले, तथा जिसने ब्रह्मवयिश्रिम को सेवन कर के इन्द्रियों को अपने वश में किया हो, योग के सब अंगो के सेवन से प्रकाशमान, सूर्य के समान शुभ गुण कर्म स्वभाव से सुंशोभित, और पिता के समान प्रजाओं के पालन करने वाला पुरूष हो, उसे राज्य करने के लिये स्थापित अर्थात अभिषिक्त करें।

यजुः १२-२२

२) ईश्वर उपदेश करता है मनुष्यों! जो प्रशस्त गुणकर्म स्वभाव वाला, राज्य की रक्षा में समर्थ हो उसे समाध यक्ष (राजा) बनाकर आप्तनीति से चक्रवर्ती राज्य बनाओ (तथा चलाओ) यजुः ९-२५

३) हे राज प्रजाजनों। जो विद्वान माता पिता द्वारा सुशिक्षित, कुलीन, उत्तम गुण कर्म स्वभावयुक्त, जितेन्द्रिय, ४८ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य पालन द्वारा सुशिक्षित सुशील शरीर और आत्मा से पूर्ण सबल, धर्मपूर्वक प्रजापालक प्रेमल और विद्वान् हो, उसे सभापति राजा मानकर चक्रवर्ती राज्य का सेवन करो यजुः९-४०

४) सोम राजानमवसेऽग्निमन्वारमामहे। यजुः९-२६

पारंगत विद्वानों में जिसने ४८ वर्ष ब्रह्मचर्यव्रत किया हो, ऐसे सूर्यादिगुणों से युक्त विद्वान पुरूष को राजा स्वीकार करके सच्ची नीति को बढावें। इस मन्त्र से वे दो निष्कर्ष निकालते हैं-

सामान्यतया राजा की नियुक्ति ५० वर्ष की आयु से कम में नहीं होनी चाहिये।

५) निषसाद घृतव्रतो वरूणो पस्त्यास्वा। साम्राज्याय सुक्रतुः ।। यजुः १०-२९

जो राजा वरूण के समान न्याय कर्ता बनकर प्रजाओं का पालन करता है, वह शुभ संकल्प, सुमति और सत्कर्मो के द्वारा साम्राज्य को चलाने के लिये बहुत समय तक सिंहासन पर आरूढ़ रहता है।

६) न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डिता इन्द्र ब्रवीमि ते वचः।। यजुः६-३१

हे राजन्। आपके समान, अन्य कोई प्रजा को सुख नहीं पहुचाता, यह मैं सच कहता हूँ। और मैं चाहता हूँ कि सदा आपके सम्बन्ध में यही कहता रहूँ इस मन्त्र का स्वामी दयानन्द कृत भावार्थ मननीय है।

● **मनोहर विद्यालंकार-दिल्ली**

(क्रमशः)

यजुर्वेद का स्वाध्याय

यजुर्वेद में राष्ट्र व्यवस्था

(गतांक से आगे)

यथा जीव अपने व शरीर का प्रेमपूर्वक रक्षण करता है, तथा राजा प्रजा का पालन करता है। यथा वासूर्य वायु और विद्युत् को एकत्रित करके मेघों को प्रताड़ित करके जल वर्षा से सबको सुख देता है, तथा राजा युद्ध साधनों का सम्पादन करके, शत्रुओं का संहार करके प्रजा को सुख प्रदान करने के निमित्त धर्मात्माओं का अभय और दुष्टों को भय प्रदान करे। ७-३९

१) ईश्वर यथा पक्षपात शून्य सबका सुहद् है, तथा सभापति धर्मानुवर्ती राजा होकर, प्रशंसनीय की प्रशंसा, निन्दनीय की निन्दा, दुष्ट को दण्ड और श्रेष्ठ की रक्षा करके सबका अभीष्ट सिद्ध करे। ६-३७

२) जिसकी वाणी सदा सत्य रहती है, वही राजा होने के योग्य है। जबतक ऐसा नही होता राजकर्मचारी और प्रजाजन, विश्वस्त होकर परस्पर सुखों को नहीं बढ़ा सकते। यजु: ९-१२

राजा के कर्तव्य

१) **ब्रह्मं दृहं क्षत्रं दृंहायुर्धृहा प्रजां दृंह । यजु: ६-३**

राष्ट्र में से तामसिक शक्तियों और प्रभावों को विदीर्ण करने की कामनावाले दीर्घतमा प्रजानन, विष्णंवत् व्यापक प्रभाववाले राजा से प्रार्थना करते हैं कि हे राजन् तू राष्ट्र में (ब्रह्म दृहं) परमात्मविश्वास, वेद विज्ञान और ब्राह्मी शक्ति को दृढ़ करके, उनका विस्तार करे। (क्षत्र दृंह) राष्ट्र को तथा उस की रक्षिका क्षात्र शक्ति को मजबूर बना। (आयु: दृंह) राष्ट्र की आयु, जीवनी शक्ति तथा जीवन की आवश्यकता ओं की पूर्ति करनेवाली वैश्य शक्ति को समृद्ध कर। (प्रजां दृंह) इन तीन वर्णो से बची सारी प्रजा को, अन्य वान्त्रित सभी शक्तियों तथा विद्याओं को दृढ़ करके इस राष्ट्र को समृद्ध कर।

२) **दीर्घतमा विद्वान् जन, कष्ट निवारक वरूण राजा से प्रार्थना करते हैं -**

मापो मौषधी हिंसी र्धाम्नो राजस्ततो वरूण नो मुञ्च।
यदा हुरघ्न्या इति वरूणेति शपामहे ततो वरूण नो मुञ्च।
सुमित्रिया न आप औषध्य: सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मैसन्तु।
योऽस्मान् द्वेष्टि यंच वयं द्विष्म: ।।यजु ६-२२
कीकमी या प्रदुषण

हे वरूण आप ऐसी व्यवस्था करें कि जल और अन्न के कारण प्रजा कभी हिंसित या दु:खी न हो। आपजगह जगह से इन पदार्थो का आयात करके इसके कष्ट से हमें मुक्त रक्खे।गायों को जिन्हें स्वयं अवध्य और दूसरों को पापों तथा कष्टों का संहारक कहा गया है-

हम उनके बध न करने की प्रतिज्ञा करते हैं, किन्तु आप उनसे प्राप्त होने वाले पदार्थो की कमी से हमें मुक्त रक्खे। हम राष्ट्र वासियों के लिये अन्न और जल मित्र के समान लाभकारी हों, किन्तु हममें से जो राष्ट्र द्रोह करता हो, और जिसको सारा राष्ट्र दोषी मानता हो, उसके लिये शत्रु के समान हानिकर तथा अप्राप्त हो जावें।

इन्द्रश्चसम्राट् वरूणश्चराजा । यजु: ६-३७

३) **द्रापे अन्धसस्पते दरिद्र नीललोहित।**
आसां प्रजानामेषां पशूनां मा मेर्मा रोड़ं मो चन: किंचनानमत् ।। यजु: १६-४१

हे द्रापे-कुत्सित गति (कर्म) से रक्षक, अन्धसस्पते-अन्न के स्वामिन्, दरिद्र-घुमक्कड, और अत एव, नीललोहित-परिस्थिति के अनुसार अपने स्वरूप को परिवर्तित करनेवाले रूद्र राजन्। आप ऐवी व्यवस्था करो कि आप की मानवीय तथा पाशविक प्रजाओं मे से कोई भयग्रस्त हो, न जीवन में कोई भंग, (दुर्घटना) सताए और न कोई रोग व्याप्त हो। अर्थात् शासन में भोजन और चिकित्सा की पूर्ण व्यवस्था हो।

दरिद्र (घुमक्कड़ प्रै-वै-डि सूर्यकान्त शब्द संकेत करता है कि राजा का कर्तव्य है कि वह प्रकट तथा छद्रवेशों में प्रजा में घूम घूम कर उनकी व्यथाओं और कष्टों का स्वयं भी निरीक्षण करे।

४) **अग्ने त्वं सुजागृहि वयं सुमान्दिषीमहि।**
रक्षा जो अप्रयुच्छन् प्रबुधे न: पुनस्कृधि। यजु: ४-१४

हे राष्ट्र नायक! हम प्रार्थना करते हैं कि आप सदा जागरूक रहें, जिससे हम सदा आनन्द मग्न रहें। आप प्रमाद रहित होकर हमारी रक्षा करें, जिस से यदि हम कभी पथ भ्रष्ट हो जाएं जो आप पुन: हमें चेता दें।

५) **यथा न: सर्व मिज्जगदयक्ष्मं सुमना असत्।**
यजु:१६-४

हे रूद्र! आप ऐसी व्यवस्था करें कि आप के राष्ट्र का प्रत्येक गतिशील प्राणी सदा शरीर से निरोग और मन से सुमना रहे।

६) **अग्ने अच्छा वदेह न: प्रति सुमना भव**
प्र नो यच्छ सहस्रजित् त्वं हि धनदा असि।।
यजु: ९-२६

हे राष्ट्र नायक! आप अपनी प्रजा के प्रति सदा मन में कल्याण भाव रखकर शुभ वचन बोलें। क्योंकि आप ही प्रजा की धनसम्पदा को बढ़ाने में समर्थ हैं।

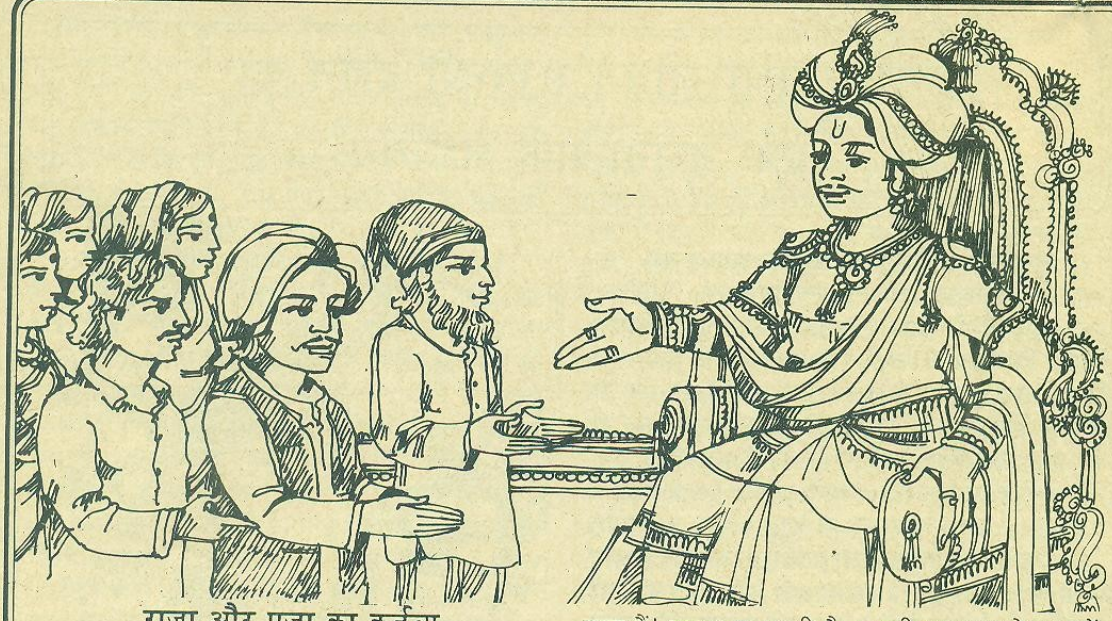

राजा और प्रजा का कर्तव्य

१) **क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नामिरसि।**
मा त्वा हिंसीन्मा मा हिंसी ।। यजु: २०-१

हे प्रजाजन! आप ही क्षत्र=राष्ट्र का आधार हो, और हे राजन। आप ही राष्ट्र का केन्द्र हो। अत: दोनों व्रत लें कि मैं कभी तुम्हारी हिंसा नही करूंगा अर्थात् तुम्हारे साथ अन्याय, अत्याचार नहीं करूंगा, और तुम कभी मेरी हिंसा न करना-मुझे धोखा न देना। यदि ऐसा हुआ तो राजा और साम्राज्य दोनों ही दीर्घजीवी होते हैं।

शत्र राष्ट्र के साथ हमारा व्यवहार

दृते दृहं मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूत्तानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्यचक्षुषा समीक्षामहे।। यजु: ३६-१८

हे दुष्ट दु:खनिवारक राजन्! तू अपने राष्ट्र को इतना दृढ़ बना ले, कि सभी राष्ट्र हमें अपना मित्र बनाना चाहें, मैं (सेनाध्यक्ष आथर्वर्ण) भी सब के साथ मित्रवत् व्यवहार करूँ। इस प्रकार हम परस्पर मित्र भाव बनाएं रक्खें। किन्तु यदि कोई हम से शत्रुता करे या द्वेषाभाव रक्खे, या हमें बदनाम करे और हम पर धौंस जमाए तो हे केन्द्र में स्थित सेनाध्यक्ष तू उन सबको भस्म कर दे।

यो नोऽ स्मभ्यमरावीयाद्यश्च नो द्वेषते जन:।
निन्दोद्यो अस्मान् धिप्साच्च सर्व तं भस्मसाकुरू।।
यजु : ११-८०

क्योंकि सहस्त्राणि सहसुशो बाहेस्तव हेतय: तासामीशानो भगव: पराचीना मुखाकृधि।। यजु: १६-५३

तेरे सैनिकों का बाहुओं में अनेक प्रकार असंख्य अस्त्र मज शस्त्र हैं। उनका तू स्वामी है, उनकी सहायता से तू उन्हें पराह, मुख करके भगा दे। इतने पर ही बस मत करना। अपितु उनपर आक्रमण करके उन्हें पूरी तरह दग्ध कर देना, जिससे वे शत्रं हृदय में शोकातुर हुए घने अन्धकार में पड़े रहें। उन्हें इस स्थिति से उबरने का कोई मार्ग न मिले। उनमें से कोई वीर बचने न पावे, उन्हें चुनकर नष्ट कर दे।

अमिप्रेहि निर्दह हत्सु शोकैरन्धेनामित्रस्तमसा सचन्ताम्।
यजु: ११-४८

गच्छामित्रान्प्रपद्यस्व मामीषां कञ्चनोच्छिष:। यजु: ११-४५

राष्ट्र के अन्त: स्थशत्रुओं के साथ व्यवहार

घूर्व घर्वन्तं धूर्व तं योऽस्मान्धूर्वति। यजु: १-८

अवस्थिरा तनुहि यातुजूनां जा मिमजामिं प्रमृणीहि शत्रूनं।
यजु: १३-१३

सजूरिन्द्रेण देवैर्दूरा६वीयो अपसेघ शत्रूनं। यजु: २९-५५

जो राष्ट्र के साथ घूर्तता (द्रोह) करते हैं, उनका वध। (तक) करा दे।

और जो सज्जनों के साथ धूर्तता करते हैं, उन्हें भी दण्डित कर।

अपनी आरक्षक शक्ति का विस्तार करके, प्रजा को यातना देने वालों का तथा उनके सम्बन्धियों और सहकारियों को शत्रुओं के सदृश दण्डित और पीड़ित कर।

देश के शत्रओं को अपने दिव्य दूतों की सहायता से पहचान कर देश निकाला देकर उन्हें दूर से हटा दें। स्वामी दयानन्द ने यजु: ३०-५ के भावार्थ में लिखा है कि सज्जनों की उन्नति कीजिये, दुष्टों को निकालिये, दण्ड और ताड़ना भी दीजिये।

(क्रमश:)

मनोहर विद्यालंकार
दिल्ली

यजुर्वेद का स्वाध्याय

यजुर्वेद में राष्ट्र व्यवस्था

(गतांक से आगे)

स्वामी दयानन्द ने २९-५५ मन्त्र के भावार्थ में लिखा है कि-

राज पुरुष और प्रजाजन परस्पर ऐसी प्रतिज्ञा करें, हम परस्पर ऐसा व्यवहार करेंगे जिससे हमारी रक्षा और सबके सुखकी उन्नति (बृद्धि) होवे।

अग्ने सहस्व पृतना अभिमातीइपास्य। दुष्टास्तरन्नरातीर्वर्चोधा यज्ञवाहसि। यजु : ९-३१ सकल विद्यावित् अग्निसम प्रचण्ड राजन्। राजधर्मयुक्त राज्य में, अभिमान और हर्ष से युक्त शत्रु सेनाओं को दूर भगा कर, स्वयं अजेय होकर अदान शील अन्तः शत्रुओं पर विजय पाकर, अपनी प्रजा में विद्याबल न्याय आदि को धारण कर। **अग्नि पशुरासीत्तेनायजन्त स एतं लोकमजयत्-यस्मिन्नग्निः स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबैता अपः।**

(यजुः २३-११

इस मन्त्र में राष्ट्राध्यक्ष प्रजापति की सम्पूर्ण विजय के साधनों का वर्णन है- पृथ्वी के अधिपति अग्निदेव सदृश स्थल सेनाध्यक्ष पशुवत् आज्ञापालन और कर्म करने में परतन्त्र होना चाहिये। उसके द्वारा राष्ट्र के शासक धर्म युद्ध करते हैं, और अग्निदेवताधिष्ठित पृथ्वीलोक का, राजा विजयी स्वामी बन जाता है, किन्तु उस विजय के लिये एक शर्त है कि स्वयं राजा और उसका सेनाध्यक्ष तथा सैनिक, सहज प्राप्त प्राकृतिक खान पान का सेवन और स्वकर्तव्य का पालन करने वाला हो।

अन्तरिक्ष लोक के अधिपति वायु देवसदृश वायु सेनाध्यक्ष दूर दर्शी तथा दर्शनीय होना चाहिये। राष्ट्र के शासक उसे निमित्त बनाकर धर्म युद्ध करते हैं, और

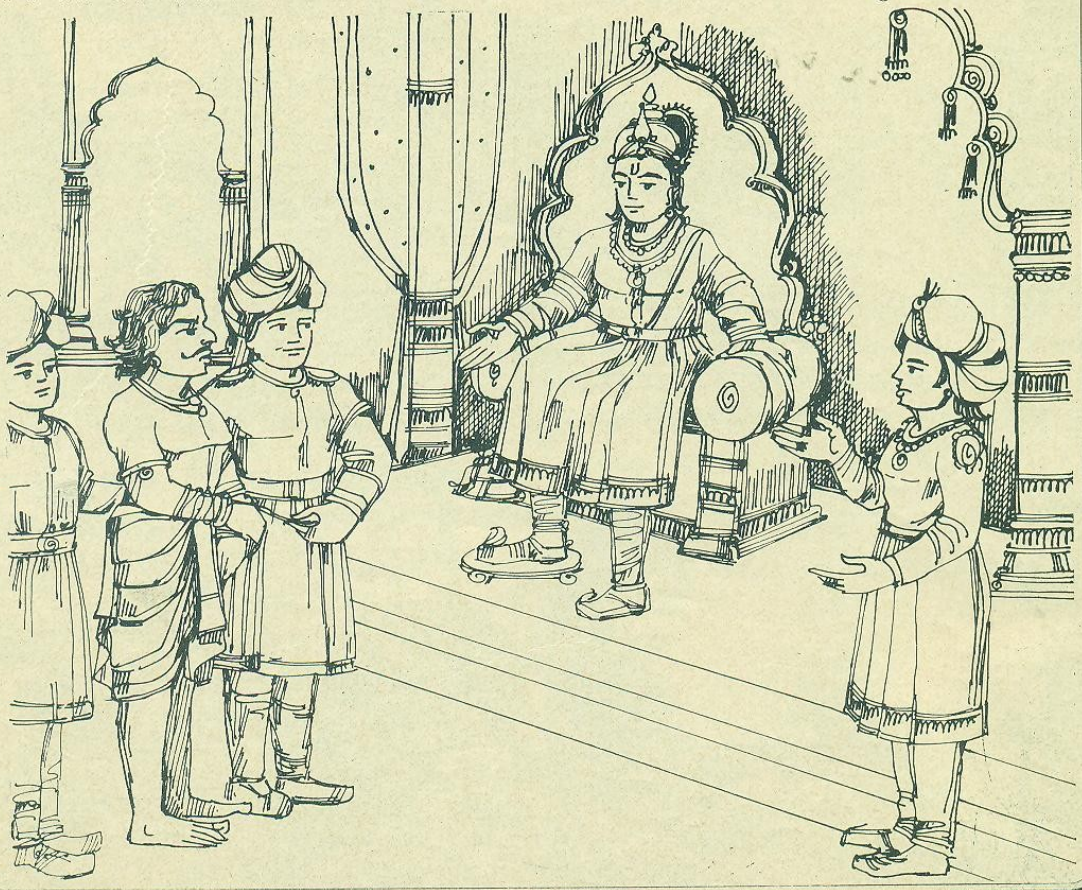

तदधिष्ठित अन्तरिक्ष लोक को जीतकर, राजा अपना बना लेता है, न शतै कि वह स्वयं और उसके सैनिक संयमी तथा तपस्वी हों।

समुद्र से जल लेकर उसे सहस्त्र गुणित वर्षाकर अन्नोत्पादन द्वारा प्राणियों का पालन करने वाले, अतएव समुद्र और द्युलोक के नियन्ता सूर्य देव सदृश सर्वोच्च सेनापति को अत्यन्त दूरदर्शी तथा दर्शनीय होना चाहिये। उसके माध्यम से राष्ट्र के शासक शत्रुओं को परास्त करने और प्रजा में शान्ति तथा सम्पन्नता बनाए रखने के लिये अपना कर्तव्य पालन रुप यश सतत जारी रखते हैं, और तदधिष्ठित लोक को राजा अपने अनुकूल बना लेता है। बशर्ते कि राजा, सेनापति और सेना में प्रत्येक संयमी और प्रकृति अन्न जल से सन्तुष्ट होकर स्वकर्तव्य पालन करनेवाला हो।

व्यवस्था के लिये कर ग्रहण

राष्ट्रकी व्यवस्था को सुचारु रुप से चलाने के लिये धन की आवश्यकता होती है। राजा, प्रजा पर अनेक रुप में कर लगाकर धन प्राप्त करता है। यजुर्वेद के मन्त्रों में स्पष्ट रुप से किसी प्रकार के कर का वर्णन दृष्टिगोचन नहीं होता। किन्तु स्वामी दयानन्द ने अपने वेद भाष्य में मन्त्रों का भावार्थ लिखते हुये प्राय: सभी करो की चर्चा की है। नीचे स्वामीजी की भाषा को न लेकर, उनके भाव का वर्तमान कालमें प्रचलित भाषा में दिया जा रहा है।

१) राज्यव्यवस्था में रहनेवाले प्रजाजन अपने पदार्थो का कर चुकावें, और राजा प्रजा की रक्षा के निमित्त दुष्ट जीवों तथा मनुष्यों को दण्ड देकर प्रजा धर्म में प्रवृत्त कर। यजु: ६-६

यहा आयकर, धनकर, चुंगी, आयात व निर्यात कर तथा उत्पाद कर और कृषिकर सभी को ग्रहण किया जा सकता है।

२) प्रजा का कर्तव्य है कि राज्य कर्मचारियों को समस्त पदार्थो का यथायोग्य भाग दें यजु: ६-३०

३) जो ये राज पुरूष कर लेते हैं, वे हमारी निरन्तर रक्षा करें, नहीं तो न लेवें, और हम भी उन्हें कर न देवें। यजु : ९-११

प्रशासन के दुष्ट या भ्रष्ट हो जाने पर कर न देने वाला आन्दोलन करने का भी संकेत है।

४) राज कर्मचारी अनीति से प्रजाओं से धन न लेवें। अपितु प्रतिज्ञा करें कि हम सदा तुम्हारी रक्षा करेंगे, और दुष्टों को सदा दण्ड देंगे। यजु : ६-२३

५) जो कर देने योग्य पुरुषों से कर दिलावें, वे ही मन्त्री होने योग्य हैं। मन्त्री ऐसे व्यक्तियों को नियुक्त करना चाहिये जो - यजु : ९-२४

सदाचारी तथा जनता पर प्रभाव डालने में समर्थ, हों जनता जिनके उपदेशों और आदेशों को स्वीकार करती हों।

कर की सीमा

कर की सीमा का संकेत इस वेद में नहीं मिलता। अर्थ सम्बन्धी विचार करते हुवे अथर्ववेद में इसकी चर्चा हुई है-

यद्राजानो विजभन्त दूष्टापूर्तस्य पोऽष यमस्यामो सभासदः। अविः तस्मात्प्रमुञ्चति दतः शितिपात् स्वधा। अथर्व ३-२९-१

कर नियमन समिति के राजसभासदोंने श्रम द्वाराअर्जित (इष्ट) तथा अपूर्त-उत्तराधिकार में अथवा अनायास, प्राप्त, दोनों प्रकार की आय का पोऽष भाग लेने की व्यवस्था अथवा राज्य के भाग रुप में विभाजन कर दियाहै। स्वयं प्रदत्त किया हुवा यह कर, कर दाता को अपमान और दण्ड की कालिमा से बचाये रखता है (शितिपात्)

यहां पोऽष का अर्थ कुछ व्याख्या का १६% करते हैं, और दूसरे सोलहवां भाग करते हैं।

शिक्षा के संकेत

इस वेद में शिक्षा के सम्बन्ध में स्पष्ट रुप से कुछ नहीं कहा गया हैं, विद्या और अविद्या का वर्णन प्रदर्शित करता है कि वेद अध्यात्मिक और व्यवहारिक अथवा चरित्र और अक्षरज्ञान दोनों का समान महत्व देता है, और इन्हें पूरक मानता है।

अविषया मृत्युं ती र्त्वा विद्ययामृतमश्नुते । यजुः ४०-१४

इस प्रकरण में भी स्वामी दयानंद द्वारा प्रदत्त भावार्थो कुछ अंशी का अध्ययन लाभकर होगा।

१) न्याय पूर्वक प्रजापालन और विद्यादान ही राजाओं का यश है। यजुः९-१

२) राजा को ऐसा प्रयत्न करना चाहिये जिससे वेद विद्या का प्रचार तथा शत्रु विजय सुगम हो। यजुः ९-११

३) हे राज पुरुषों! कन्याओं को पढ़ाने के लिये / शुद्ध स्त्रियों को नियुक्त करो, जिससे ये विद्या और शिक्षा प्राप्त करें, और स्वयंवर विवाह करके वीर पुरुषीं को उत्पन्न करें।

४) राजा को चाहिये कि सब स्त्रियों को विदुषी बनाए, जिससे किसी का बालक विद्या और शिक्षा के बिना न रहे। यजुः १०-१

५) वसवस्त्वाञ्जन्तु गायत्रेण छन्दसा रुद्रास्त्वाञ्जन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसा,

आदित्यास्त्वाञ्जन्त जागतेन छन्दसा। भूर्भवः स्वः।

यजुः २३-८

प्रथम श्रेणी के २४ वर्ष पर्यन्त ब्रह्म चर्य पूर्वक शिक्षा प्राप्तं "वसु" संसक विद्वान् प्रभु भजन और कर्तव्य पालन के प्रचार द्वारा भौतिक उन्नति कर के तेरे राज्य के भौतिक स्तर (भूलोक) को उन्नत करके निखारें। मध्यम श्रेणी के ३६ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य पूर्वक शिक्षा प्राप्त "रुद्र" संज्ञक विद्वान्,

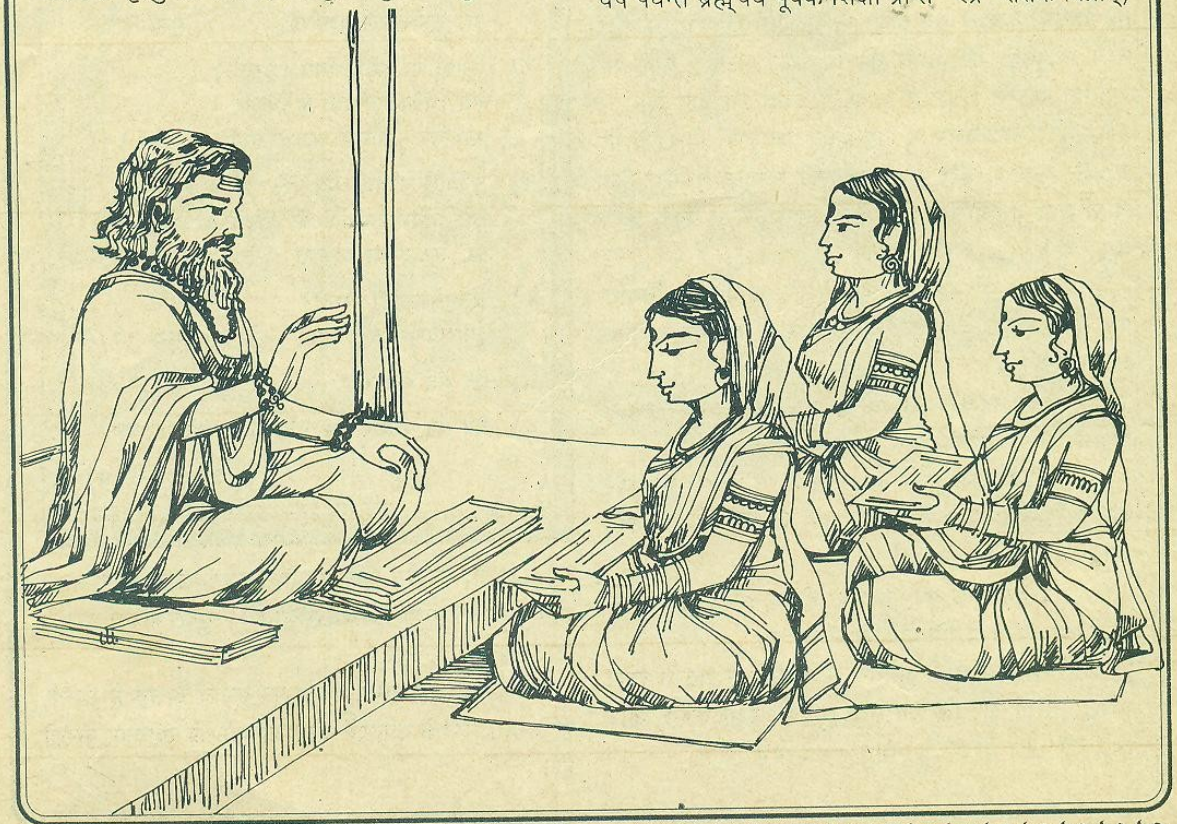

काम, क्रोध, लोभ के निराकरण द्वारा चारित्रिक स्तर को उन्नत करके चिन्तन के मानसिक स्तर (भव:लोक) को निखारें। उत्तम श्रेणी के ४८ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य पूर्वक शिक्षाप्राप्त "आदित्य" संज्ञक विशेषज्ञ विद्वान क्रियात्मक और विचारात्मक द्विविध प्रगति द्वारा समाज के बौद्धिक स्तर (स्व:लोक) को निखार कर विख्यात करें।

६. यजु: ३०-१० में "आशिक्षायै प्रश्निनम्, उपशिक्षया अमिप्रश्नि नम्, मर्यादायै प्रश्नविवाकू "आए उपवाक्य संकेत करते हैं कि राज्य में शिक्षा के आधार को दृढ़ तथा विस्तृत करने के लिये प्रश्नोत्तर की शैली का आश्रय लेना चाहिये।

स्वास्थ के सम्बन्ध में चर्चा

१) ऊर्ज नो धेहि चतुष्पदे। यजु: ११-८३

प्रजा के दोपाये और चौपाये सभी प्राणियों के प्राणधारण के लिये आवश्यक अन्न का प्रबन्ध कर।

२) द्विपाच्चतुष्पादस्मांक सर्वमस्तु - अनातुरम्।
यजु: १२-९५

हमारे मध्य रहनेवाले दोपाये तथा चौपाये सभी प्राणियों की निरोगता के लिये चिकित्सा का प्रबन्ध कर।

३) मा हिंसी: पुरुषं जगत। यजु: १६-१

गतिशील पुरुष (पुरिशेते - प्राणी) और विशेष रुप से मनुष्य को पीड़ित और हिंसित मत होने दे। इससे यह संकेत मिलता है किसी प्राणी की हिंसा करके उसका मांस खाने की प्रवृत्ति को रोके।

४) मापो मौषधीर्हिसी: । यजु: ६-२२

राष्ट्र के जल और अन्न के प्रदुषण के निवारण का प्रबन्ध कर, जिससे वे किसी प्राणी की मृत्यु का कारण न बन सकें।

५) इहै हैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषा नम उक्तिं यजन्ति। यज् २३-३८

जो विद्वान् और कृषक परार्थ स्तुति करते हैं, अथवा अन्न का उत्पादन करते हैं, उनके भोजन का प्रबन्ध करना, शासन का कर्तव्य है।

न्याय व्यवस्था

यो अर्वन्तं जिघांसति तमभ्यमीति वरण: । परो मर्त: पर: श्वा। यजु: २२-५

जो प्रगतिशील और पर दु:खकातर प्रशस्त पुरुष को पीड़ित या हिंसित करना चाहता है, उसे न्यायकर्ता वरुण का विभाग अपने पाश में घेर लेता है, और उसे दण्डित करता है, किन्त प्रजा का कर्तव्य है कि ऐसे मनुष्य का सामाजिक बहिष्कार करे और उसे शासन को सौंप दे, जैसे कुत्ते को पवित्र स्थान से परे खदेड़ दिया जाता है।

इस प्रसंग में स्वामी दयानन्द के वेदभाष्य के भावार्थो में दो मननीय हैं।

१) न्याय से प्रजा का पालन ही राजपुरुषों को यज्ञ कराना है।

२) जो राजा प्रिय अप्रिय को छोडकर न्यायधर्म से सब प्रजा का शासक होकर, मध्यस्थवृत्ति से सब प्रजाओं का पालन करे, वही सबका पूज्य होवे। यजु: १०-१०

प्रजा के योगक्षेम के लिये राजा द्वारा परमात्मा से प्रार्थना यजु: २२-२२ में प्रजापति प्रजा की शान्ति व समृद्धि की कामना करता है-

क) हे सर्वतो बृहत् : इस राष्ट्र में ब्राह्मण सर्वत्र सर्व तेजस्वी हों, क्षत्रिय लक्ष्य प्राप्ति में, कुशल, दुष्टदमन और पराक्रमी हों।

ख) गायें दुधारे, वृषभ भारवाही और अश्व (यातायात साधन) शीघ्रगामी तथा सर्व व्यापी हों।

ग) महिलाएं गृहस्थ धर्म पालिका तथा बुद्धिमती हों।

घ) राज्य का रथारोही सभ्य धनीवर्ग भी वीर और विजयशील हों। हमारे राष्ट्र को किसी से ऋण लेने के लिये प्रार्थना न करनी पड़े।

राज्य में जहां आवश्यकता हो, और जब हम चाहे, वर्षा हो। अतिवृष्टि और अनावृष्टि के कारण प्रजा को कष्ट न हो।

६) हमारे यहां औषधियां अर्थात् दाले, सब्जियां और अन्न प्रचुर मात्रा में सुलभ हों।

इस प्रकार हमारे राज्यमें प्रजा का योग और क्षेम सदा बना रहे।

आ ब्रम्हन् ब्राम्हणो ब्रम्हवर्चसी जायतामाराष्ट्रे राजन्ये: शूर इषव्यो
तिव्याधी महारथी जायतां, दोग्ध्री धेनुर्वोढाऽनड़ानाशु: सप्रि: पुरंधिर्योषा
जिष्णू रथेष्ठा: समेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम् ।
निकामे निकामे न: पर्जन्यो
वर्षतु फलवत्यो न ओषधय: पच्यन्तां योगक्षेमो न: कल्पताम्।।

रथेष्ठा = धनी वैश्य वर्ग - भोज मश्वा: सुष्ठुवाहो वहन्ति सुवृद्रथोवर्तते दक्षिणया:।

(ऋक् १०-१०१-११)

● **मनोहर विद्यालंकार**
दिल्ली